पाठ्यपुस्तक विश्लेषण



बच्चों की नई किताबों की बस्ती में

पल्लव

पाठ्यपुस्तकें हमारे देश में निर्दोष विषय नहीं हैं। सरकारें बनने और बदलने के साथ ही स्कूलों में भी हलचल शुरू हो जाती है जो तबादलों से किताबों तक चलती है। अभी-अभी राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान द्वारा निर्मित हिन्दी की तीन पाठ्यपुस्तकें आई हैं जो क्रमशः कक्षा एक, तीन और पांच के लिए हैं। संस्थान के निदेशक ने आमुख में लिखा है कि 'हमने यह विशेष ध्यान रखा कि सीखने की प्रक्रिया में बच्चों की भागीदारी होनी चाहिए' और पुस्तकों की संरचना में इस 'प्रक्रिया' के लिए जगह बनाने की भरपूर कोशिश भी दिखाई पड़ती है। इन किताबों में पढने-पढ़ाने के साथ-साथ चित्रों में रंग भरना, पहेलियां बूझना जैसी विभिन्न गतिविधियां हैं तो बच्चों को भाषा सीखने के लिए प्रेरित करने वाले तत्व भी इनमें देखे जा सकते हैं।

एक-एक कर इन तीनों किताबों को ध्यान से देखना चाहिए। सबसे पहली किताब पहली कक्षा के विद्यार्थियों के लिए है। यहां किताब का जोर 'पाठ' से कहीं ज्यादा अन्य क्रियाओं पर है। कविताएं, चित्र और छोटे-छोटे किस्से-कहानी मिलकर किताब को पूर्णता देते हैं। अंग्रेजी स्कूलों में पढ़ाई वाली किताबों भी विभिन्न प्रकार की रेखाओं के अभ्यास होते हैं जिन्हें करने पर लिखना सीखना आसान हो जाता है। इस किताब के ज्यादातर अध्याय इस दृष्टिकोण से तैयार किए गए हैं कि पढ़ने वाले विद्यार्थी को अक्षर, मात्रा और शब्दों का ज्ञान हो सके। रचनाएं सामान्यतः ठीक-ठाक हैं और कोशिश दिखाई देती है कि इनमें हमारी सांस्कृतिक बहुलता दिखाई दे। इसी तरह कहना चाहिए कि यह किताबें विद्यार्थियों को सीखने और समझाने की ललक जगाती हैं लेकिन यह इन्हें पढ़ाने वाले अध्यापक पर निर्भर करेगा क्योंकि किताबों का प्रस्तुतिकरण ऐसा है कि विद्यार्थी एक बार भले स्वतः आकृष्ट हो जाएं लेकिन वह स्वयं इन्हें लेकर बहुत उत्सुक नहीं हो सकेगा।

इस किताब का सबसे कमजोर पक्ष इसके चित्र हैं। एकरसता से भरे और बेहद सामान्य। आलम यह कि चित्रों में आई सारी

लेखक परिचय

लगभग एक दशक से हिन्दी साहित्य का अध्यापन, हिन्दी की लघु पत्रिका 'बनास जन' के संपादक। संप्रति : हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में साहित्य के प्राध्यापक हैं।



लड़कियां एक जैसी हैं- चोटी वाली चाहे उनका नाम सुषमा हो, इमरती हो या मरियम। भले लोगों ने एक ही बार ऊंट बना लिया और उसको ही अधिकतर इस्तेमाल किया। सबसे बड़ी बात है कि यह इतने कृत्रिम और बोझ से भरे लगते हैं कि इनमें जीवन की गति नहीं दिखाई पड़ती। विडम्बना यह है कि किताब का बड़ा आग्रह चित्रों के मार्फत पढ़ाई में ललक पैदा करना रहा है।

तीसरी कक्षा की किताब में विविधता और अधिक है और रचनाओं का चयन भी ठीक है। यहां कठपुतली कला पर फीचर जैसा एक नाटक है जो बच्चों की रुचि निश्चय ही इस विधा में जगा सकेगा। और भी अच्छा होता अगर यहां दादी पदमजी जैसे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के भारतीय कठपुतली कला- विशेषज्ञ के बारे में बात होती या राजस्थान के लोक कला विशेषज्ञ कोमल कोठारी का जिक्र आता। इस किताब में 'भारत कितना प्यारा है' शीर्षक कविता के साथ दिए सवालों में सोचकर लिखने की गतिविधि है और वहां आता है- 'मैं सैनिक हूं। भारत मां की रक्षा करूंगा।' तथा 'मैं पहाड़ हूं। भारत मां को खनिज दूंगा।' क्यों? क्या सिर्फ मेरे देश या भारत लिखने से काम नहीं चल सकता था? नेहरू की भारत माता पर टिप्पणी बार-बार दुहराने का मन करता है जिसमें उन्होंने कहा था कि भारत माता कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैला हुआ जमीन का टुकड़ा नहीं है अपितु इस भू-भाग पर रहने वाले लोग भारत माता हैं। भावुकता की इस खुराक को हमारी पाठ्यपुस्तकें बचपन से देती हैं जिससे पाठक को कारगिल में गोली चलाने की प्रेरणा जरूर मिल जाती है लेकिन भारत में रहने वाले लोगों में गैर-बराबरी को जायज मान लेने की चोर समझ भी। कक्षा पांच की किताब में चेतक पर एक कविता दी गई है जो ठीक इसी रूमानी देशभक्ति का तरल पाठ है। क्या महाराणा प्रताप के जीवन से प्रेरणा लेने के लिए भावुकता जरूरी है? इस तरह की पंक्तियां हमारे महापुरुषों का अवमूल्यन ही करती हैं 'संकेत मिला ज्यों राणा का, चेतक बिजली-सा टूट पड़ा। से ममता की, श्रद्धा का जलधर छूट पड़ा।'

इन किताबों में भारतीय जीवन की बहुलता-विविधता को समेटने की कोशिश निश्चय ही दिखाई देती है। गवरी, अजमेर शरीफ, अमृता देवी, नानकजी भील पर लिखे अध्याय इसकी गवाही देते हैं लेकिन यह विविधता सिंथेटिक है जमीन से निकल रहे कुदरती फूलों की तरह नहीं, कानून का सम्मान करते हुए जैसे सबको जगह देने का संकल्प पूरा किया जा रहा हो। शुद्धतावाद का आग्रह ही ऐसा करता है कि भोजन के विभिन्न चित्रों को बताते हुए उसमें अंडे या मांस से बचता दिखाई दे। तर्क दिया जा सकता है कि पहली कक्षा के बच्चे को ऐसी खुराक क्यों दी जाए? तब तो पहली कक्षा के बच्चे को टीवी का कोई कार्टून नहीं देखना चाहिए और न स्वास्थ्य कार्यक्रम के सरकारी विज्ञापन। चित्र इन सभी किताबों का सबसे कमजोर पक्ष है और शुद्धतावाद की झलक इनमें भी देखी जा सकती है। तीसरी कक्षा की किताब में आ रहा करीम आधी रात को भी धोती बांध कर कुंए पर पानी पीने गया है, तहमद लगाकर नहीं। एक जगह जूते बनाने वाले कारीगर की कहानी आई है लेकिन चित्रकार और संपादक को संभवतः यह जानकारी ही नहीं कि जिस औजार पर जूते गांठे जाते हैं वह तीन मुंह वाला होता है जिसे मेवाड़ के कारीगर एकलवाई कहते हैं। यहां दो मुंह वाला बनाकर इतिश्री कर ली गई है। देखना चाहिए कि इन किताबों से क्या हमारे पारंपरिक ज्ञान और कौशल के प्रति सम्मान बढ़ता है या श्रमशीलता के प्रति आदर विकसित होता है तो कहना पड़ेगा कि लगभग नहीं। पांचवीं की किताब में किसान की बुद्धिमानी की कहानी आई है लेकिन क्या अच्छा होता कि कोई ऐसा पाठ चुना जाता जिसमें साधारणता के दर्शन होते। याद कीजिए 'मजदूरी और प्रेम' जैसे निबन्ध। यह देखना भी कष्टप्रद है कि हिन्दी की पारंपरिक कविता के किसी भी प्रतिनिधि रचनाकार को कोई स्थान नहीं मिल पाया है न मीरा न कबीर न तुलसीदास। प्रेमचंद की एक कहानी को शामिल किया गया है- गुब्बारे पर चीता। यहां विद्वान संपादकों ने एक जगह आ गए शब्द 'बम्बई' को सुधारकर 'मुम्बई' कर दिया है, एक आने को एक रुपया कर दिया गया है। क्या यहां कोष्ठक में यह लिखने से काम नहीं चल सकता था कि पहले मुम्बई को बम्बई कहा जाता था या पहले हमारी मुद्रा में आना भी होता था। यह बात भी समझ में नहीं आती कि रचनाकारों के नाम यहां रचनाओं के साथ क्यों नहीं दिए जाते? साथ ही सारी रचनाएं साभार लेकर बाजार में क्यों दी जा रही हैं? रचनाकारों के चयन पर भी बात की जा सकती है और यह कहना चाहिए कि क्षेत्र और स्थानीयता के मापदंड पर भी अच्छे विकल्प मिल सकते थे। ◆